33

22 का चक्कर

एक संयोग मैंनें अपने और अपने परिवार का 22 के अंक के साथ जुड़ा हुआ पाया है। मेरे बचपन की बात है। हमारा एक कर्मचारी जो हमारा दूर का संबंधी था, हमारी कपड़े की दुकान में काम करता था। दुकान में कपड़ों की बिक्री के अलावा बैंकिंग का भी काम होता था और नित्य हजारों रुपये दिये-लिये जाते थे। उस दिन किसी जमींदार ने बाइस सौ रुपये देर से जमा किये जो मुनीम ने दुकान के अंदर की कोठरी में रख दिए। उन्हें दूसरे दिन बैंक में जमा करना था। उस कर्मचारी ने यह देख लिया। पुराने मकान की उस दुकान में घर के अंदर से भी सीढ़ी द्वारा जाया जा सकता था। वह कर्मचारी संबंधी होने के कारण कभी-कभी घर की मर्दाना बैठक में ही सो जाता था। उसने रात में घर के अंदर की सीढ़ी से दुकान में प्रवेश करके किसी प्रकार वह कोठरी खोल ली और वे रुपये लेकर घर से गायब हो गया। सुबह दुकान खुलने पर और रुपये न मिलने पर हल्ला मचा और खोज होने पर जब अन्य लोगों के बीच केवल वही व्यक्ति नहीं दिखाई दिया तो उस पर शक जाना स्वाभाविक था। कई दिनों बाद राजस्थान के अपने घर पर वह पकड़ा गया। रुपये तो अधिकांश वह लुटा चुका था परंतु चोर के पकड़े जाने से परिवार को संतोष अवश्य हुआ। संबंधी होने के कारण अंत में उसे छुड़ाकर शरण भी देनी पड़ी।

दूसरी घटना मेरे बचपन के मित्र विपिन से संबंधित है जिसका वर्णन मैं स्कूल के दिनों के वर्णन के पिछले पृष्ठों में कर चुका हूँ। 1951 में मेरी एक सरकारी गल्ले की दुकान थी जिसको सँभालने का काम मैंने उसे दे रक्खा था। उसी समय मेरे मित्र कामता सिंहजी को असेंबली की टिकट देने का प्रश्न दिल्ली में कांग्रेस के पारलियामेंट्री बोर्ड के सामने विचारार्थ गया था। बिहार की सीटों पर अंतिम निर्णय के लिए तीन व्यक्तियों की जो पार्लियामेंटरी कमिटी बनी थी उसके एक सदस्य श्री हरेकृष्ण मेहताब तक मेरी पहुँच हो सकती है, इस विचार से मैं भी कामताबाबू के साथ दिल्ली गया था और प्रायः 15-20 दिन वहाँ रुक गया था। मेरी अनुपस्थिति में गल्ला दुकान की बिक्री के रुपये जो बैंक में जमा होने थे, विपिन अपने काम में लगाता गया। काम भी क्या था! नित्य मित्रों की

मंडली जुड़ती और गाना बजाना होता। मैंने जब दिल्ली से लौटकर हिसाब माँगा तो 22 सौ रुपयों की बिक्री का हिसाब तो मिल गया, परंतु उनमें से एक पाई भी बैंक में जमा नहीं हुई थी। मैं क्या कर सकता था! अपने मन के संतोष के लिये उससे एक कागज लिखाकर चुप हो गया। उसकी नीयत खराब नहीं थी, केवल उसके स्वभाव का दोष था। एक बार कहीं से उसे 250 रुपये मिले तो उसने लाकर मुझे दे दिये। मैंने उन्हें लेकर उसका कागज फाड़ दिया। इस घटना में भी 22 सौ रुपयों की राशि के गबन का ही प्रश्न था।

तीसरा उदाहरण है, अपनी सोने चाँदी की दुकान का। अपने साझेदार के पुत्र द्वारा चोरी करने के जिस प्रयास का मैंने वर्णन किया है, यह घटना उसके पहले की है। उस किशोरवय बालक ने दुकान में रखे कुछ स्वर्णाभूषण चुरा लिये। खोज होने पर और धमकाने पर उसने चोरी स्वीकार कर ली। उसने उन्हें 2200 रुपयों में एक व्यक्ति के हाथों बेच दियां था। आभूषण अधिक के थे इसलिए मैं उन्हें रुपये देकर भी वापस लेना चाहता था। परंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी उस व्यक्ति का पता नहीं चल सका।

चौथी घटना मेरे कलकत्ता से आते समय घटी। मैं वहाँ से 2200 के नबंरी नोट लेकर कार से गया आ रहा था। उन दिनों मैं खादी की धोती पहनता था जिनमें बड़ी कठिनाई से मैंने अंटी में वे नोट लपेटे। भोर के समय जब गाड़ी रानीगंज के पास पहुँची तो मैं लघुशंका के लिए एक निर्जन स्थान पर उतरा। रुपये जो अंटी में थे, वहीं गिर गये। मुझे उनका कोई ध्यान ही नहीं था। मैंने रानीगंज में अपनी बहन से मिलकर आगे जाने का निश्चय किया। बहन से बातें करते समय एकाएक मुझे रुपयों का ध्यान आया। अंटी में रुपये न पाकर मेरे होश उड़ गये। तुरंत कार 5-7 मील वापस उस स्थान पर ले गया जहाँ मैं लघुशंका के लिए उतरा था। परंतु रुपये कहाँ मिलने थे! हारकर लौट आया। यह घटना 1957 के आस पास की है।

इस प्रकार 1930, 1941, 1954, और 1957 में चार बार 2200 रुपयो की हानि की घटनायें घटीं जिनमें एक तो मेरे परिवार से और तीन सीधे मुझसे संबंधित थीं।

इन घटनाओं में 2200 की राशि ही खोयी थी। इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता है। यदि संयोग हो तो यह उसी प्रकार का संयोग है जैसे किसीको ताश के फ्लश के खेल में चार बार लगातार तीन इक्के मिल जायँ।